रूसी कहानी

इवान बूनिन

कस्त्यूक

कस्त्र्यूक (रूसी कहानी) : इवान बूनिन

कस्त्र्यूक (रूसी कहानी) : इवान बूनिन

Kastrayuk (Russian Story) : Ivan Bunin

1

खेतों वाले रास्ते के निकट बनी अंतिम झोंपड़ी के पीछे से अचानक ज़ालेस्नी के लाल पूरी रफ़्तार से छोटे-छोटे घोड़ों पर उड़ते हुए आए। उछलते हुए, लगाम को कस कर पकड़े, वे एक दूसरे से होड़ लगा रहे थे और हवा उनकी फूलदार कमीज़ों को गुब्बारे की तरह फुला रही थी। गाय का बछड़ा डर के मारे खलिहान में घुस गया, मुर्गियाँ मुर्गे के पीछे-पीछे ज़मीन से चिपके-चिपके बेतहाशा भागने लगीं। मगर सबसे ज़्यादा डरी हुई थी सिर्फ एक कमीज़ पहनी, सफ़ेद बालों वाली नन्ही-सी बच्ची, जो गाँव की सड़क पर जान हथेली पर लिए दौड़ी जा रही थी। भय से पगलाई यह बच्ची सब्ज़ियों के आँगन में कूदी और गिरते-पड़ते अचानक अंबार के दरवाज़े पर उसने अपने दादू को देखा। ज़ोर से चीख़ मारकर वह उसके घुटनों से लिपट गई।

“का करत हो, का करत हो पगली?” दादू भी उसे कमीज़ पकड़कर थामते हुए चिल्लाया।

“छोटे ज़मीन्दार...घोड़ों पे!...” आँसुओं के कारण अवरुद्ध गले से बड़ी मुश्किल से शब्द फूटे।

दादू ने उसे घुटनों पर बिठा लिया और सान्त्वना देने लगा।

नातिन जल्दी ही शांत हो गई और बीच-बीच में सिसकियाँ लेते हुए उसने दादू को पूरी बात सुना दी।

उसके बालों में हाथ फ़ेरते हुए दादू ख़यालों में डूबे-डूबे मुस्कुराया।

बखार ठण्डा और आरामदेह था। बसन्त के साफ़ आसमान से पंछी चहचहाते हुए आकर बखार की नर्म छाँव में घुस जाते और कोने में पड़े जाल पर, धान के भूसे पर बैठ जाते। चारों ओर सब कुछ शान्त और स्वच्छ था – गाँव में भी और दूर हरे-हरे खेतों में भी। प्रातःकाल की धूप धरती को गरमा रही थी, और बसन्ती धूप में उस पर थरथराती जलवाष्प तैरती दिखाई दे रही थी। वहाँ, खेतों में जुताई शुरू हो गई थी, चमकीले काले पंछी हल के निकट फुदक रहे थे। यहाँ, गाँव में, झोंपड़ियों की छाँव में, छोटी बच्चियाँ चर्खा लिए घास में बैठकर मीठी आवाज़ में गीत गा रही थीं। बच्चों और बूढ़ों को छोड़कर सभी खेत में थे। – नटखट ओरेल, बुयान और शारिक भी।

दादू को अपने जीवन में आज पहली बार बुढ़ापे के कारण घर

रुकना पड़ा। बुढ़िया बड़े दिन के कुछ ही बाद मर गई। वह ख़ुद भी बसन्त के आगमन पर बीमार ही रहा और देख न पाया कि पूरा गाँव खेती के काम पर जा चुका है। “फ़ोमिन” *(बसन्त का एक त्यौहार – अनु।)* के अन्त में वह कुछ चलने-फिरने लायक हुआ, मगर अभी भी पूरी तरह स्वस्थ्य नहीं हुआ था। और अब, ग्राम्य जीवन की परिस्थितियों को देखते हुए, उसे खेती की दृष्टि से महत्वपूर्ण सुबह घर पर ही बितानी पड़ी।

“तो, कस्त्र्यूक (दादू को गाँव में सब इसी नाम से बुलाया करते, क्योंकि पीकर वह कस्त्रूक *(लोक गीतों का शक्तिशाली नायक – अनु।)* के बारे में गीत गाया करता), तो, कस्त्र्यूक,” बेटे ने सुबह-सुबह हल का रस्सा ठीक करते हुए कहा, जब उसकी बीबी आलुओं वाली गाड़ी पर मशक बाँध रही थी, “इधर-उधर न डोलियो, झोंपड़े का और दाशा का ख़याल रखियो...बछड़ा मारे ना...”

बंडी की बाहों में दोनों हाथ घुसाए, नंगे सिर, दादू उसके निकट जाकर खड़ा हो गया।

“कस्त्र्यूक, तोसे, दादू, तोसे कहत रहिना” वह झेंप भरी मुस्कुराहट से बोला।

बेटा अनसुनी करके रस्सी को दाँतों से खींचते हुए कामकाजी अंदाज़ में बोला :

“तुम, भैया, बुढ़ा गए हो। मन काहे खराब करत हो, आराम से बैठ खर्राटे भरो।”

“ठीक है,” दादू ने यंत्रवत् कहा।।

जब बेटा चला गया तो वह किसी काम से अंबार में गया, फिर मोट (जलवाहक) को घसीट कर छाँव में रखा – कोई न कोई काम ढूँढ़ता रहा। कभी मन लगाकर, बूढ़ी कमर सीधी करके, खत्ती में आटा ऊपर नीचे करता रहा, कभी कुल्हाड़े से इधर-उधर ठक्-ठक् करता रहा...खलिहान में बैठकर वह एकाग्रता से ताँबे के चाकू से पाइप साफ़ करता रहा। बीच-बीच में बड़बड़ाता :

“लम्बी खिंच गई बीमारी, जिधर देखो गंद ही गंद। मरो – तो सब ख़तम ही हो जावे।”

कभी-कभी वह अपने आपको समझाने की कोशिश करता। “कोई बात नहीं!” न जाने किससे भेदभरे अंदाज़ में बोला, कभी कंधे उचकाकर हाथ मटकाते हुए कहता : “ऐ SSS, माँ को हाथ नई लगाना, बाप को नई छूणा। घोड़ा था, भाग गया...” फ़िर से सिर झुका लिया।

“उबला पानी कुएँ में।

पीर उठी जवाँ दिल में...”

वह गाने लगा, और उसे अतीत याद आ गया, ख़यालों में वह जा पहुँचा भूतकाल में, जब वह मालिक, नौकर, जवान, सहनशील था...नातिन के बालों को सहलाते हुए मगन होकर वह याद करता रहा, कि किस सन् में वह इसी समय बुआई करने निकला, किसके साथ खेत पर गया, और तब उसका घोड़ा

कैसा था...

नातिन ने फ़ुसफ़ुसाकर टहनियाँ तोड़ लाने का प्रस्ताव रखा जिसके बारे में माँ काफ़ी देर पहले कह चुकी थी। दादू मस्ती में आकर झोंपड़े की बात भूल गया और नातिन का हाथ पकड़कर गाँव से बाहर चल पड़ा। नरम-नरम खेत के रास्ते पर चलते-चलते वे अनजाने में गाँव से एक मील दूर निकल गए और नागदौने तोड़ने लगे।

“दद्दू, देSSखो!” वह जल्दी-जल्दी बोली और सुर में चिल्लाई, दे SSखो! ओ SS माँ SS!”

दादू ने आँखें उठाईं तो दूर से भागती रेल नज़र आई। उसने फ़ौरन नातिन का हाथ पकड़ लिया और उसे टीले पर घसीटा, मगर वह उसके हाथों से छिटककर किलकारियाँ मारती रही :

“दद्दू! दुलकी! दुलकी!”

सूरज की रोशनी में चमचमाती रेल का आकार बढ़ता गया और वह अतिशीघ्र निकट आने लगी। दाश्का एकाग्रता से बड़ी देर तक भागते हुए डिब्बों को देखती रही।

“स्याद, कल फिर आवे,” उसने सोच में डूबे-डूबे कहा।

चमकती चिमनी, भाप निकालते बेलन और अनेक पट्टियों वाली रेल बवंडर की तरह निकट से गुज़र गई, मुड़ गई, उसका आकार घटता गया और धीरे-धीरे वह लुप्त हो गई।

गरम हवा में भारद्वाज पक्षी गा रहे थे...चिडियाँ ख़ुशी से चहचहा

रही थीं...रेल-पटरी के निकट की घास में फूल खिले थे...एक भूला-भटका, आख़्ता किया हुआ घोड़ा फुरफुरा कर घास सूँघ रहा था, और दादू ने महसूस किया कि इस घोड़े को भी बसन्त की साफ़ सुबह का आनन्द उठाते हुए घास खाने में मज़ा आ रहा है।

“सलाम, साब!” पटरियों पर चलते हुए रेल के संतरी को देखकर दादू चिल्लाया, “ख़ुश रहो, साब!” वह संतरी से बतियाने के इरादे से आगे बोला :

“सलाम,” संतरी ने मुँह से पाइप निकाले बिना रुखाई से जवाब दिया।

“आओ, साब! कश मारो,” दादू ने आगे कहा, “कस्त्र्यूक से बतियाओ! भैया, आज हम भी चौकीदारी करत हूँ!”

“हम दूसरी रेल के लिए पटरी साफ़ करत हैं,” संतरी ने जवाब दिया और झुककर हथौड़े से ठक्-ठक् करते हुए आगे बढ़ गया।

दादू झेंपते हुए मुस्कुराया और संतरी से बोला :

“थोड़ा रुक’ई जाते!”

संतरी नहीं मुड़ा।

वापस आते हुए दादू चरवाहों से बतियाते हुए सुअरों के रेवड़ के बारे में बात करने लगा।

“अब के घास बढ़िया होवे!” वह बोला।

“बढ़िया,” चरवाहा बोला और अचानक चीख़ा : “पीछे, नासपीटों!” वह सुअरों के पीछे भागा।

रेवड़ के सुअर दो-दो की लाइन में लग गए। बेसुरी आवाज़ में उनके पिल्ले चीं-चीं करने लगे। एक पिल्ला घुटनों के बल झुका और माँ को सिर से धक्का मारकर उसके नीचे घुस गया तथा पूँछ हिलाता हुआ माँ को धकियाते हुए जल्दी-जल्दी उसका दूध चूसने लगा। दादू अपनी हँसी न रोक पाया।

2

शीघ्रता से झोंपड़े की ओर लौटते हुए उसने देखा कि ज़ालेस्नी का युवा ज़मीन्दार घोड़े पर उड़ता हुआ उसी की ओर आ रहा है, और वह रास्ते पर खड़े घोड़े को फुर्ती से हटाने लगा : ज़मीन्दार का घोड़ा कंधे मोड़े, मस्ती में उड़ता हुआ जो आ रहा था।

उसे थामते हुए और पूरी शक्ति से लगाम खींचते हुए ज़मीन्दार झोंपड़े की छाँव में रुक गया। दादू सम्मानपूर्वक देहलीज़ पर खड़ा हो गया।

“नमस्ते, कस्त्र्यूक!” ज़मीन्दार ने बड़े प्यार से कहा और भूरी दाढ़ी वाले लाल चेहरे का पसीना पोंछते हुए सिगरेट निकाली।

“गर्मी है,” कहते हुए उसने दादू की ओर सिगरेट बढ़ा दी।

“आदत नहीं है, मिकलाय पित्रोविच,” वह खिखियाया।
“पाइप, ये वाला। या लाल बीड़ी – हम बुढ़ऊ को एही पसन्द आवे।”

“मैं तुम्हारे पास काम से आया हूँ,” निकलाय पित्रोविच ने धुँआ छोड़ते हुए बात शुरू की। “मझारीव्का जा रहा था...टोपी तो पहनो, सिम्योन!...हाँ, और तुम्हारे पास भी आया हूँ। लुगाइयों को मेरे पास नहीं भेजोगे?”

“का, अभी तक बुआई नहीं हुई?” दादू ने चिन्ता से पूछा।

“इस बार देर हो गई...मैं अकेला ही नहीं हूँ।”

“देर कर दी, मिकलाय पित्रोविच, देर कर दी...”

“मैं...” ज़मीन्दार ने आगे कहा, और अचानक वह इतनी ज़ोर से चीख़ा : “देखो!” कि दादू पूरी ताकत से घोड़ा थामने दौड़ा।

“थोड़ा-बहुत बोया है,” ज़मीन्दार ने फिर से शुरुआत करते हुए कहा, “ मगर, अब पूरा करना ही होगा। लुगाइयों को मेरे पास भेज देते।”

“इकेल्ले संभाल लेओ हो, मिकलाय पित्रोविच?”

“हाँ, तुम अपने लोगों से कहो तो...”

“सिपाहिन घर में है कहाँ?” दादू ने कामकाजी सुर में नज़दीक से गुज़रती हुई बुढ़िया से पूछ लिया और फ़ौरन अपनी जीभ काट ली।

“अगर सिपाहिन होती, तो वो आती,” उसने लीपा-पोती करते हुए कहा। “और मैं, मालिक, आज घर पे ही बैठूं हूँ...आने-जाने की मनाही है...पहले जैसी बात होती, तो खेत पर और तुम्हारे पास अकेले ही एक साँस में कटाई कर लेता।”

"अफ़सोस," ज़मीन्दार ने सोच में डूबे हुए कहा। "शायद शाम को फ़िर आना पड़ेगा," और उसने लगाम खींची।

"तुम, मालिक, मुझे ही काम पर लगा देते..."

"लग जाओ," ज़मीन्दार ने लापरवाही से मुस्कुराते हुए कहा।

"कब आऊँ?"

ज़मीन्दार ने गौर से उसकी ओर देखा और सिर हिला दिया।

"काम पर कब आओगे?! ओह, क्या बहादुर हो!"

"मैं, मालिक? हाँ, मैं उन सब को, जवानों को कमर से पकड़ लूँ। मैं फ़िर से शादी कर सकूं हूँ! शादी पर नाचूँ भी!"

"तुम भी, बस!" ज़मींदार ने हँस कर टोकते हुए कहा, घोड़े को चाबुक मारी और आगे बढ़ गया।

दादू खड़ा रहा, सोचता रहा...

सभी कुछ उससे कह रहा था कि अब वह किसी काम का नहीं है। बस, घर को उसकी ज़रूरत है, जब तक पाँव जवाब नहीं देते...

"चले गए," उसने ओझल होती हुई घोड़ा गाड़ी की ओर देखते हुए सोचा और भट्ठी से डबलरोटी निकालने चल पड़ा।

रोटी खाकर नातिन लड़कों के साथ भेड़ों के पीछे-पीछे चरागाह पर चली गई। वे सभी इतनी दयनीयता से जाने की इजाज़त माँग रहे थे कि दादू मना नहीं कर सका, सिर्फ बोला :

“कुछ ना मिले, बच्चा, अभी तो घास फूटी है...”

कुछ और काम न होने के कारण झोंपड़े में वापस आकर वह फिर खाना खाने लगा। उसने अपने लिए आलू छीले, मसले, उनमें थोड़ा दूध डाला (डरते-डरते कि इस पर भी बहू नाराज़ होगी) और बड़ी देर तक वह लापसी खाता रहा।

खाली झोंपड़ी में हवा गरम थी। नन्हे-नन्हे, धुँधले शीशे के टुकड़ों से छन-छन कर सूरज की गरम किरणें डबल-रोटी के टुकड़ों, एक बड़ी चम्मच और काली-काली मक्खियों से अटी मेज़ पर प्रहार कर रही थीं।

अचानक दादू विभोर हो गया – उसे याद आया कि छत के नीचे से बीड़ी के पत्तों का बंडल निकालना है, उन्हें ठीक-ठाक करके उनमें तम्बाकू भरना है। पत्थर की दीवार पर ऊपर की ओर रेंगते हुए वह गिरते-गिरते बचा – उसका सिर घूमने लगा और पीठ में मानो शूल चुभने लगा...उसने दुखी होकर फिर से अपने बुढ़ापे के बारे में सोचा और सुस्ती से झोंपड़ी की देहलीज़ के निकट पहुँचकर, जहाँ अभी तक छाया थी, धीरे-धीरे काम करना शुरु किया।

दोपहर तक तो मानो पूरे गाँव को साँप सूँघ गया। बसन्ती दोपहर की ख़ामोशी ने मानो उस पर जादू की लकड़ी फेर दी थी...

पड़ोस की बूढ़ियाँ देर तक मुख्य रास्ते पर खड़ी रहीं – इस आशा से को कोई उन्हें काम के लिए बुला ले – फिर लेट गईं,

अपने चेहरों पर उन्होंने परदे डाल लिए और सो गईं। छोटे-छोटे बच्चे एकाग्रतापूर्वक तालाब के निकट से लाई हुई मिट्टी के घरौंदे बना रहे थे। कभी-कभार गाँव के ख़ामोश उनींदेपन को झकझोरती मुर्गे की बाँग सुनाई देती या सोती हुई औरतों के निकट खूँटे से बंधा कोई बछड़ा रंभाता। खेतों में पहले ही की तरह भारद्वाज पक्षी गा रहे थे, हरियाली छाई थी और क्षितिज पर पिघले शीशे के समान वाष्प थरथरा रही थी।

दादू अंबार के निकट लेट कर सोने की कोशिश करने लगा। उसने जंगल की साँय-साँय करती हवा के कारण झर-झर गिरती रई की धार की कल्पना की, मगर नींद न आई।

आँखें बन्द करके पड़े-पड़े दादू सोचता रहा अपने बुढ़ापे के बारे में।

इस समय आन्द्रे गाड़ी के नीचे खर्राटे भर रहा होगा। दादू को तो अब शायद, मरते दम तक खेत में सोना नसीब नहीं होगा। कामकाज के मौसम में वह लम्बे, गर्म दिन अकेले, अपनी नातिन के साथ ही बिताएगा। मगर एक वक्त था, जब उससे बेहतर कटाई करने वाला पूरे इलाके में कोई नहीं था। जब पूरा गाँव ज़मीन्दार के यहाँ कटाई करने जाता, तो वह सबको लेकर चलता था। उससे ज़्यादा कोई पी भी नहीं सकता था। जब खेतों से वापस लौटकर ज़मीन्दार के आँगन में मर्द अंबार के निकट वोद्का की बाल्टी के चारों ओर बैठ जाते और शुरू हो जाता हँसी-मज़ाक।

मगर उसने कभी भी अपने होश नहीं खोए। हर चीज़ सलीके से होती थी : झोंपड़ी पर हर शिशिर ऋतु में नई फ़ूस की छत पड़ती, घोड़ा हमेशा गाड़ी से बंधा रहता था ("भट्टी! – मर्द कहते – नंगे बदन सो जाओ!"), और बेटे की शादी पर तो उसने सबको आश्चर्यचकित कर दिया। पूरा गाँव वह नज़ारा देखने उमड़ पड़ा, जब विवाहोत्सव के पश्चात् आन्द्रे पहली बार दावत के लिए ससुराल जा रहा था। अपनी सजी-धजी बीबी के साथ वह नई "बग्घी" में बैठा था, जो फ़ूलदार कपड़े से आच्छादित थी, जुराबों वाला एक पैर उसने किनारे पर रखा और उड़ चला...दादू को आशा थी कि बुढ़ापे में उसका परिवार गाँव का पहला संयुक्त परिवार होगा, वह किसी को लड़ाई-झगड़ा करने नहीं देगा, पूरे कामकाज पर नज़र रखेगा...

"सोचता था, बुढ़ापे में तर रोटी खाऊँगा" वह बड़बड़ाया।

मगर सब कुछ उलट-पलट हो गया।

छोटा बेटा अलग हो गया, और बड़ा, हालाँकि उसके साथ ही रहता था, मगर सब कुछ उसकी मर्ज़ी से नहीं चलता था – ख़ास बात यह हुई कि – बुढ़िया ने सबको बेमौत मार डाला। वह सबसे बुरे, अकाल के दिनों में मरी। उसके पैर भी कमज़ोर पड़ गए और अब उसे आख़िरी दम तक बच्चों के साथ ही रहना पड़ेगा, चौकीदारी करते हुए।

"आह, साथी म्हारो," उसने कड़वाहट से सोचा – "सुल्तान – वो भी आँगन से भाग गया।"

और, वह किस बात पर रोता रहा, किस बात की उम्मीद करता रहा – भगवान ही जाने।

“ना मिली इज़्ज़त,” दादू ने अपने बेटे को याद करते हुए सोचा, जो उसे चौकीदारी पर बिठा गया था – “ना दौलत – कछु नाहीं। दम निकले, तो एक घोड़ा भी आँसू न बहाएगा।”

3

यह दिन उसे बहुत लम्बा प्रतीत हुआ।

दाश्का चरागाह से लौट आई थी और बाहर खेलते हुए बच्चों में शामिल हो गई थी।

“मैं भी जाऊँ, सीटी बजाऊँ?” दादू ने कड़वाहट से सोचा और आख़िर उससे रहा नहीं गया।

“देखो, मालकन, झोंपड़े को देखो!” उसने पड़ोसन बुढ़िया से कहा जो धीरे- धीरे अंबार के निकट कपड़े खींच रही थी।

“का, उकता गए?” उसने तरस खाते हुए पूछा।

“उकता गया, मालकन! तुम लुगाइयाँ जाने कैसे घर में बैठत हो।”

“देर लगाओ हो?”

“ना, अभी, एक मिनट...”

सूर्यास्त में अभी देर थी। मगर दादू के अनुमान से आन्द्रे को शाम से पहले लौट आना चाहिए था। डूबते हुए सूरज को देखकर उसे

महसूस हुआ कि बेचैनी बढ़ने का यही वक्त होता है।

वापस लौटते हुए वह रास्ते पर ग्लोबच्का से मिला। ग्लोबच्का – ऊँचा, दुबला-पतला किसान, झुर्रियों वाले पीले चेहरे, फूली-फूली पलकों वाला – पुराने जैकेट में, जिसके छेदों से उसकी कमीज़ दिखाई दे रही थी, घोड़े की पीठ पर तिरछा बैठकर आ रहा था, खाली, उलटी मशक पीछे-पीछे घिसटती आ रही थी, उसकी किनार पौधों से टकराकर खड़खड़ा रही थी।

“ऐ, मालिक, पूरी मशक पी गया?” दादू ने मज़ाक किया।

“पी गया,” ग्लोबच्का ने फ़ीकी मुस्कान से कहा।

“म्हारे लोग जल्दी आवे?”

“आत रहिन!”

“थारी बच्चियाँ किधर हैं?”

“बच्चियाँ आत रहिन,” ग्लोबच्का ने टका-सा जवाब दिया।

दादू बेलों के मंडप के नीचे बैठ गया और नीचे सरक आए सूरज के कारण आँखें सिकोड़ कर दूर, रास्ते की ओर देखने लगा।

खेत में बसन्ती शाम की ख़ामोशी छाई थी। पूरब की ओर नर्म गुलाबी बादल छा गए थे। बादलों के लम्बे पैरों वाले वस्त्र सांझ के स्वागत की तैयारी कर रहे थे। जब सूरज ने हौले से उनमें से एक को छुआ तो खेत पर, मैदान पर नम, हरियाली, वाष्पयुक्त, नाज़ुक, नर्म हवा तैर गई। भारद्वाज पक्षी दिन की अपेक्षा अधिक शांत और मीठे स्वर में गा उठे। वाष्प सराबोर थी तरोताज़ा

सुगंध से – बौराई घास की, मदमाते फूलों की...दादू ने आँख़ें बन्द कर लीं, आहट लेते हुए, थपकियाँ देते हुए।

“अगर बारिश आ जावे,” उसने सोचा, – “रई तो उठ गई है। ना, सूरज फ़िर निकल आया!”

यह याद आते ही कि कल उसे फ़िर बूढ़ा दिन बिताना होगा, उसके माथे पर सिलवटें पड़ गईं और वह सोचने लगा कि कैसे इससे छुटकारा पाया जाए। उसने निराशा से सिर हिलाया, लम्बे, ढीले, बूढ़ों वाले कुर्ते में पीठ खुजाई...और आख़िर में उसके दिमाग में एक ख़ुशनुमा ख़याल तैर गया।

“तो, काम ख़तम हो गया?” आधे घण्टे के पश्चात् बेटे के साथ चहलकदमी करते हुए, हाथों में मशक पकड़े, खोजती हुई दृष्टि से उसने पूछा।

“खतम तो हो गया,” आन्द्रे ने प्यार से जवाब दिया, “और तुम कैसे रहे? शायद उकता गए?”

“ई...ई...।ख़ुदा बचाए!” दादू दिल की गहराइयों से बोला, “गोभी बटोरते बूढ़े सिपाही जैसा काम किया।”

और हँसते हुए, शब्दों को याचना करने जैसा न कहते हुए, उसने रात की रखवाली की बात पूछा ली।

“बच्चों के साथ...हाँ?” उसने बेटे की आँखों में आँखें डालते हुए पूछा।

“उसमें क्या है, जाओ!” आन्द्रे ने जवाब दिया। “बस घोड़े को

पानी पिलाना न भूलना।”

अपनी ख़ुशी छिपाने के लिए दादू खखारने लगा।

4

देर शाम गए, खाना खाने के बाद उसने घोड़े की पीठ पर ढीला-ढाला लबादा और कोट डाला, उस पर पेट के बल चढ़ गया और बच्चों के साथ चल पड़ा।

“ऐ, बुढ़ऊ के लिए रुको,” वह चिल्लाकर उनसे बोला।

बच्चों ने सुना नहीं। मुखिया का बेटा उसके निकट से गोल-मटोल, मुख से फ़ेन निकालते हुए टट्टू पर नंगे पैर पसारे निकल गया। रास्ते पर हल्की-सी धूल उड़ी। टट्टू की टापों की आवाज़ शोर और हँसी मज़ाक में घुल गई।

“दादू,” कुछ बच्चे बारीक आवाज़ों में चिल्लाये, “आओ, होड़ लगाएँ!”

दादू ने हौले से घोड़े के पेट में उँगलियाँ गड़ाईं।

गाँव से एक मील जाकर, ढलान पर, वह तालाब की ओर मुड़ गया।

कीचड़ में पैर जमाकर, भिनभिनाते हुए मच्छरों के कारण खाल को झटका देते हुए घोड़ा बड़ी देर तक पानी पीता रहा। उसके गले से घूँट-घूँट अन्दर जाता पानी भी दिखाई दे रहा था। आख़िर में वह कुछ देर के लिए पानी से दूर हटा और सिर उठाकर ख़ालीपन से इधर-उधर देखने लगा। दादू ने बड़े प्यार से

उसे देखकर सीटी बजाई। घोड़े के होंठों से बूंद-बूंद गरम पानी गिर रहा था और वह शायद सोच रहा था, या तालाब के ख़ामोश पानी को देखकर मगन हुआ जा रहा था। तालाब में गहराई तक किनारे की परछाईं पड़ रही थी, शाम का आसमान और सफ़ेद बादलों के झुण्ड भी दिखाई दे रहे थे। इस प्रतिबिम्ब के टुकड़े पानी में हिचकोले खा रहे थे और पानी में उठती गोल-गोल तरंगों में घुल-मिल जा रहे थे...घोड़े ने कुछ और घूँट पानी पिया, गहरी साँस ली और कीचड़ से एक के बाद दूसरा पैर निकाल कर किनारे पर वापस आया।

आधी निकली नाल की आवाज़ में, अपनी शानदार चाल से, गहराते अँधेरे में वह रास्ते पर चल पड़ा। इस लम्बे दिन का दादू के मन पर ऐसा प्रभाव पड़ा था, मानो वह दिन भर बीमार रहा हो और अभी-अभी ठीक हुआ हो। उसने ख़ुशी से घोड़े को आवाज़ लगाई, पूरी गहरी साँस लेकर सीने में शाम की ताज़ी हवा भर ली।

“नाल को बिना भूले निकालना होगा,” उसने सोचा।

खेत में बच्चे बीड़ी पी रहे थे, बहस कर रहे थे कि कौन कब रखवाली करेगा।

“छोड़ो बहसबाज़ी, बच्चों,” दादू ने कहा, “अभी वास्का रखवाली करेगा, तेरी ही तो बारी है। तुम बच्चा लोग, लेट जाव! सिर्फ किनारे सिर करके न सोइयो – भेड़िया दबोच लेगा।।”

और, जब घोड़े चुप हो गए, और नज़दीक लेटे बच्चों का शोर

बन्द हो गया, मचान पर हो रहा हँसी-मज़ाक थम गया, तो दादू ने किनारे के निकट कोट और लबादा बिछाया और निर्मल हृदय से, धन्यवाद के भाव से घुटनों पर बैठकर बड़ी देर तक अँधेरे, तारामंडित, सुन्दर आकाश की ओर, चमचमाती, येरूशलम की राह दिखाने वाली, दूधिया आकाश-गंगा की ओर देखकर प्रार्थना करने लगा।

अंत में वह भी लेट गया।

अंतहीन मैदान पर अँधेरा बढ़ता जा रहा था। स्तेपी की ताज़ी, बसन्ती रात में खेत डूब गए। उनके पीछे, रात के अँधेरे से परे, सूर्यास्त की पृष्ठभूमि पर एक अकेले मस्तूल की भाँति, दूर कहीं स्थित, पवन चक्की की धुँधली आकृति दृष्टिगोचर हो रही थी...

(मूल रूसी भाषा से अनुवाद किया है आ। चारुमति रामदास)